अध्याय-4

गठबंधन की राजनीति पर मायावती के विचार

मायावती का जन्म 15 जनवरी 1946 को नई दिल्ली के लेडी हार्डिंग अस्पताल में हुआ था। इनका बचपन का नाम नैना कुमारी था। इनके पिता प्रभु दयाल केन्द्रीय सरकार के डाक-तार विभाग में एक क्लर्क थे। इनकी माता रामरती देवी एक अशिक्षित महिला थी मायावती के पिता ग्राम बादलपुर के जिला गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। इनके पिता को सरकारी नौकरी मिल जाने के कारण वे दिल्ली में आकर बस गये।[1]

मायावती की कांशीराम से भेंट होने पर उनका जीवन ही बदल गया। यह उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बनी। इस आयरन लेडी की कामयाबी से लोग हैरान थे क्योंकि इन्होंने कांशीराम की मृत्यु के बाद बसपा और दलित आन्दोलन को बिखरने नहीं दिया। मायावती ने अपने दम पर 2007 में सरकार बनाकर हैरान तो किया ही था, इसके साथ-साथ दलित आन्दोलन को इन्होंने तमाम सामाजिक वर्गों के राजनीतिक मंसूबे के साथ जोड़ भी दिया। मायावती ने अम्बेडकर के मिशन को आगे बढ़ाकर पहली बार समाजवादी पार्टी से अल्पमत गठबंधन किया। लेकिन यह गठबंधन ज्यादा समय तक नहीं टिक सका। उसके बाद दूसरी व तीसरी बार भाजपा और कांग्रेस से गठबंधन कर सत्ता प्राप्त की। परन्तु यह भी अल्पमत गठबंधन की सरकार कुछ ही समय तक रह सकी। चौथी बार मायावती ने ब्राह्मण वर्ग से चुनाव पूर्व गठबंधन करके अपने दम पर सत्ता प्राप्त की जो एक दलीय बहुमत सरकार का गठबंधन था। जिसके कारण बसपा ने अम्बेडकर की विचारधारा को आत्मसात करने के साथ-साथ पुन: परिभाषित भी किया है।

गठबंधन की राजनीति में मायावती

बसपा के राजनीति गठबंधन की शुरूआत 1991 के बाद होती है फिर भी बसपा के गठबंधन

---

[1] अजय बोस, *''बहनजी'' एक राजनैतिक जीवनी*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 22.

की राजनीति निम्नलिखित है–

बसपा और सपा का अल्पमत गठबंधन (Minority Coalitions)

बहुजन समाज पार्टी के गठबंधन की राजनीति की शुरूआत 1991 से होती है क्योंकि उसके सामने कुछ ऐसी परिस्थितियां थी जो इस प्रकार है कि बहुजन समाज पार्टी के नायक कभी भी किसी पार्टी से गठबंधन करने के खिलाफ थे। लेकिन उनको कुछ समस्याओं ने गठबंधन करने के लिये मजबूर किया।[2] जैसे कि मन्दिर, मस्जिद व मण्डल कमीशन की घटनाओं से उनके विचारों में बदलाव आना शुरू हुआ जिससे वह समाजवादी पार्टी के करीबी होने लगे। उन्हें लग रहा था कि जनता दल व कांग्रेस को कमजोर बनाने के लिये सपा से समझौता किया जाए क्योंकि कांशीराम को लग रहा था कि भाजपा हिन्दुत्व की लहर के कारण मत प्रतिशत बढ़ा सकती है, जिससे की जनता दल के पिछड़े वर्ग व मुस्लिम वोट एवं कांग्रेस के दलित वोट बसपा व सपा को मिल सकते हैं। अगला मकसद मुलायम सिंह ने 1992 के लोकसभा उपचुनाव में कांशीराम को अपने गढ़ (इटावा) से जीताकर उन्हें सांसद बना दिया था जिससे यह समझौता मजबूत होता गया।[3]

1993 के विधानसभा चुनावों में समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी ने गठबंधन करके एक अल्पमत गठबंधन की सरकार बनाई और मुलायम सिंह मुख्यमंत्री बने।[4] इस गठबंधन से भाजपा 221 सीटों से घटकर 177 पर रह गई जबकि कांग्रेस 46 से घटकर 28 सीटें ही प्राप्त कर सकी। इसी के साथ जनता दल की 92 से घटकर 27 सीटें ही रह गई। बसपा और सपा की सीटों में बढ़ोत्तरी हुई। इस गठबंधन से बसपा को चमार, कुर्मी पार्सियों के साथ-साथ एक छोटे हिस्से (मुस्लिम वर्ग) का भी समर्थन प्राप्त हुआ। इस गठबंधन से कांग्रेस, भाजपा, जनता दल, इन पार्टियों के मत खिसक कर सपा व बसपा को प्राप्त हुये। बसपा ने जिस

---

2 अमिताभ कुमार मिश्रा, *भारत में गैर कांग्रेसी सरकारें : उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन,* मानक पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005, पृ. 211.

3 Ibid., p. 213.

4 अजय बोस, Op.cit., (1), p. 83.

मकसद से गठबंधन किया था उस मकसद से वोट बैंक में काफी इजाफा हुआ। इस गठबंधन से उसने दलित व अन्य पिछड़े वर्ग के साथ अल्पसंख्यक वर्ग में अपनी पकड़ मजबूत की। कुछ समय के बाद यह गठबंधन कमजोर होता चला गया और धीरे-धीरे विध्वंस के कगार पर आ गया। गठबंधन के विध्वंस होने के कई कारण थे। मुलायम सिंह, कांशीराम की अन्त:चेतना को न समझ सके। इसका कारण यह भी बना कि मंत्री पद को लेकर विवाद के साथ-साथ दलितों पर अत्याचार भी बढ़ रहे थे। मायावती ने इन अत्याचारों को कई बार छिपाने की कोशिश की। लेकिन यादव, ठाकुर जाति के अत्याचारों की सीमा खत्म हो चुकी थी। एस. सी/एस.टी. आयोग की गणना के अनुसार 1980-90 के बीच अत्याचार के मामले 1067 दर्ज थे। 1995 में इनकी संख्या बढ़कर 14966 हो गई।[5] कुछ ऐसे कारण भी थे जैसे की अम्बेडकर की मूर्तियों को यादवों द्वारा हटाया जाना, जो मेरठ में मार्च 1994 में हुआ। इन सभी घटनओं के कारण इतना खट्टास पैदा हो गया कि कांशीराम मुलायम सिंह से कभी मिलने तक नहीं गये। पर गेस्ट हाऊस में मुलायम सिंह उनका काफी इंतजार करने के बाद भी वह उनसे मिलने नहीं आते, जिसके कारण उनके बीच दूरी बढ़ती जा रही थी। बसपा को सबसे बड़ा धक्का तब पहुंचा जब पंचायत के चुनावों में सपा ने 60 प्रतिशत सीटों पर कब्जा किया और बसपा को एक प्रतिशत सीट का मुंह देखना पड़ा।[6] जिसके कारण यह गठबंधन कुछ समय के बाद टूट गया।

भाजपा और बसपा का अल्पमत गठबंधन (Minority Coalitions)

कांशीराम का संसद में जाना महत्वपूर्ण साबित हुआ। भाजपा नेता वाजपेयी के घर पर आने-जाने से काफी नजदीकियां बढ़ती गई। वहाँ राजनीति के मुद्दों पर काफी बहस होती थी जिससे भाजपा के नेता यह समझ चुके थे कि उत्तर प्रदेश में हिन्दुत्व की ताकत इतनी मजबूत नही है कि बसपा से मिले बिना अब सत्ता में आना मुमकिन है। यह भी जान चुके थे कि पिछड़ी व मध्यवर्ती जातियां बढ़ते राजनैतिक स्तर के कारण अब रूकावट पैदा कर सकती है।

---

5 अमिताभ कुमार मिश्रा, Op.cit., (2), p. 295.

6 Ibid., p.223.

इसी कारण वे बसपा से गठबंधन करने के लिये बहुत उत्सुक थे।[7]

दलित और ब्राह्मणों के बीच समझौते से मध्यवर्ती व पिछड़ी जातियों के प्रभाव का विरोध किया जा रहा था। जिससे कि बहुत से ब्राह्मण कांग्रेस को छोड़कर बसपा में शामिल हो रहे थे। इसी मकसद से भाजपा कांशीराम को मुख्यमन्त्री बनाना चाहती थी। लेकिन मुलायम सिंह के साथ सम्बन्ध खराब होने के कारण भाजपा ने इसका लाभ उठाया और 3 जून 1995 मुलायम सिंह की सरकार सत्ता से बाहर हो गई और भाजपा से समर्थन मिलने के कारण मायावती ने अपनी सरकार बनायी, गेस्ट हाऊस की घटना ने मुलायम सिंह को और विरोधी बना दिया।

भाजपा और बसपा के बीच गठबंधन के कारण मायावती मुख्यमंत्री बनी लेकिन बसपा की अवसरवादी राजनीति ने भाजपा को नाराज कर दिया। धर्म की राजनीति करने वाली भाजपा और जाति की राजनीति करने वाली बसपा के बीच गठबंधन ज्यादा समय तक नहीं चल सका, क्योंकि भाजपा और बसपा के बीच तीन मुद्दों पर विवाद उत्पन्न हो चुका था।[8] (1) मुस्लिम आरक्षण (2) काशी और मथुरा की घटनायें (3) कल्याण सिंह द्वारा मायावती की आलोचना, कल्याण सिंह ने उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में मायावती की सरकार को मुलायम सिंह के नक्षे कदमों पर चलने की बात कही फिर मायावती पर आरोप लगाया कि पिछले तीन महीनों में उन्होंने 100 आई.ए.एस. और आई.पी.एस. अधिकारियों के तबादले किये हैं। आधों के दो बार तबादले किये और कल्याण सिंह ने चेतावनी दी[9] कि अगर ऐसा ही चलता रहा तो भाजपा अपना समर्थन वापस ले सकती है, साथ ही यहां तक कह दिया कि भाजपा को बसपा अपना बंधुआ मजदूर नहीं समझे। इससे नाराज होकर मायावती ने भाजपा के वरिष्ठ सदस्यों के साथ विरोध प्रकट किया।[10]

भाजपा ने बसपा से समर्थन लेने के कुछ आरोप लगाये जैसे कि पेरियार मेला, सच्ची

---

7 Ibid., p.255.

8 Ibid., p. 236.

9 कन्हैयालाल चंचरीक, *भारत में दलित आन्दोलन; मायावती : संघर्ष और सत्ता का सफर,* अतुल प्रिंटर्स,नई दिल्ली, 2006, पृ. 86.

10 *दैनिक जागरण,* नई दिल्ली, 30 अगस्त, 1995, पृ. 7.

रामायण बंटवाने पर राम को अपशब्द कहने व मुस्लिम आरक्षण, अपराधियों का राजनीतिकरण करने जैसे आरोप मायावती पर लगाये गये।[11] इन सारी घटनाओं के कारण मायावती की सरकार का पतन हुआ, भाजपा ने अपना समर्थन वापिस ले लिया। मायावती की सरकार गिर गई और यह गठबंधन टूट गया प्रदेशों में फिर राष्ट्रपति शासन लागू हो गया।

पुनः भाजपा और बसपा का अल्पमत गठबंधन (Minority Coalitions)

भाजपा ने इस बार बसपा के साथ जो गठबंधन किया। वह बहुत सोच समझकर किया था इस गठबंधन में उसकी रणनीति बाबरी मस्जिद के ध्वंस होने से संघ में जो अलगाव पैदा हुआ था उसको खत्म करने व बसपा की रणनीति से भाजपा को बहुत कम लाभ की उम्मीद थी।[12] क्योंकि जिस वर्ग से उसे मत मिलने की उम्मीद थी वह दलित व अन्य पिछड़ी जातियां एवं अल्पसंख्यक वर्ग बसपा के साथ था फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से भाजपा को इसका लाभ मिलने का सहारा लग रहा था लेकिन कांग्रेस और सपा को इस वर्ग से मत न प्राप्त हो सके। इसके लिये भाजपा बसपा से गठबंधन कर अपनी रणनीति खेल रही थी।[13] उसको अपनी विचारधारा की चिन्ता नहीं थी वह इन वर्गों को अपने साथ लाना चाहती थी। दोनों पार्टी के बीच कुछ शर्तें इस प्रकार थी।[14]

मुख्यमन्त्री के लिए दोनों पार्टी के बीच छः-छः महीने का समय बांट दिया गया। पहली बारी मायावती की होगी दूसरी भाजपा की, दोनों पार्टी को समान प्रतिनिधित्व मिलेगा, बारी-बारी से इस गठबंधन को बढ़ाया जायेगा। या एक साल के बाद इस पर पुनःविचार किया जायेगा, विधानसभा का अध्यक्ष बसपा का होगा और इसी के साथ तीन सदस्यी समिति जिसके सदस्य वाजपेयी, मायावती, काशीराम होंगे और गठबंधन की कार्य सूची में तात्कालिक वरीयता प्रदेश के अन्दर कानून के शासन को दी जायेगी। कमजोर वर्गों, अपराधिकरण और भ्रष्टाचार के मुद्दे को प्राथमिकता दी जायेगी।

---

11 *इंडिया टुडे*, 30 सितम्बर, 1995, पृ. 50

12 अमिताभ कुमार मिश्रा, Op.cit., (2), p. 282.

13 अजय बोस, Op.cit., (1), p. 125.

14 अमिताभ कुमार मिश्रा, Op.cit., (2), p. 289.

इस समझौते से बसपा को लाभ दिखाई दे रहा था जिसके कारण कल्याण सिंह काफी नाराज थे। लेकिन भाजपा के बड़े नेताओं को यह विश्वास था कि वह बसपा के साथ कांग्रेस के समझौते को तोड़ना और भाजपा को राजनैतिक अलगाव से छुटकारा मिलने के साथ दूरगामी लाभ दिखाई दे रहा था। उसकी तुलना में स्थानीय नेताओं की नाराजगी की कोई कीमत नहीं थी। इस समझौते से दलितों को भी लाभ प्राप्त होने लगा।[15] जिससे 1989 के कानून को लागू किया गया। इसका उद्देश्य उच्च जाति से दलितों के दमन की रक्षा करना। इस कानून की सपा में काफी आलोचना की गयी। भाजपा, बसपा की हिस्सेदारी की वजह से कुछ बोल तो नहीं सकती थी परन्तु अन्दर ही अन्दर उनकी पार्टी कमजोर होने लगी क्योंकि निम्न व दलित वर्ग सपा को छोडने के कारण बसपा के लिये मत बैंक बनता जा रहा था। 1989 के कानून का मायावती पर दबाव बनाना शुरू हो गया। लेकिन कांशीराम को पता चल गया कि यह गठबंधन सरकार ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकती। इसलिए काशीराम ने मायावती से कह दिया था कि हम छः साल का काम छः महीने में करेंगे। हम चुनाव के समय अपना मत बैंक दोगुना कर सकते हैं।[16]

मायावती की सरकार अपनी विचारधारा को नहीं देख रही थी क्योंकि काशीराम ने 21 अगस्त 1997 को अपने साक्षात्कार में कह दिया था कि "हमारा लक्ष्य बसपा को आगे बढ़ाने का है। हम किसी भी पार्टी से समझौता करने को तैयार है। आगे कहा बस मुझे यह विश्वास हो जाये कि ऐसा करने से बसपा मजबूत हो जायेगी। और आज से पहले भी मैंने ऐसा ही किया है मैंने भाजपा के साथ समझौता किसी समान सैद्धान्तिक आधार की वजह से नहीं किया। सच तो यह है कि हम एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत है। भाजपा के साथ समझौता हमने बसपा का आधार मजबूत करने के लिये किया है और जैसे ही हमें महसूस होता है कि अब हमें और फायदा नहीं होगा, तो हम इस गठबंधन को खत्म कर देंगे। मुझे तो सिर्फ एक उपयुक्त सीढ़ी की तलाश है।"[17] क्योंकि बसपा ने अपनी विचारधारा व कार्यक्रम को न देखकर केवल

---

15 Ibid., p. 296.

16 अजय बोस, Op.cit., (1), p. 126.

17 Ibid., p. 130.

सत्ता पर कब्जा करना ही उचित समझा। वह कांग्रेस और सपा को कमजोर करके ही सत्ता प्राप्त कर सकती थी। कांग्रेस व सपा से दलित व पिछड़ा वर्ग निकल कर बसपा में आने पर इसका मत बैंक बढ़ने लगा। बसपा की विचारधारा समय-समय पर बदलती रही क्यों बसपा को सत्ता की तलाश थी। कभी सपा से तो कभी भाजपा से गठबंधन किया उसकी विचारधारा पर प्रश्न खड़े कर दिये गये।[18] लेकिन अम्बेडकर की राजनैतिक विचारधारा ब्राह्मणवादी विचार से नहीं मिलती है। डॉ. अम्बेडकर हमेशा मनुवादी विचारधारा के खिलाफ रहे थे।[19]

बसपा व भाजपा गठबंधन की रणनीति

भाजपा और बसपा का गठबंधन मुलायम सिंह के खिलाफ था। इस गठबंधन की रणनीति पिछड़े वर्ग के वोट बैंक पर कब्जा करने की थी। मायावती ने अपने मन्त्रिमण्डल में अधिकतर प्रतिनिधित्व पिछड़े वर्ग को दिया। यह एक जातिय समीकरण था जिसमें यादवों की उपेक्षा की गई। पिछड़े वर्ग से सबसे ज्यादा कुर्मी जाति के नेताओं को मन्त्रिमण्डल में शामिल किया गया। क्योंकि इस गठबंधन का मकसद कुर्मी जाति को सपा से दूर रखना था।[20]

सवर्ण वर्ग को प्रतिनिधित्व देकर सपा से दूर करके ठाकुर व जाट मत को अपनी और आकर्षित किया। इसके साथ ही उसने अल्पसंख्यक वर्ग को अपने मन्त्रिमण्डल में जगह देकर अपना वोंट बैंक बनाया। मायावती ने अति पिछड़े वर्गों को 35 प्रतिशत अपनी पार्टी में प्रतिनिधित्व दिया जिससे इस वर्ग का मत बैंक मजबूत हुआ। उसी के साथ उसने दलितों को 29 प्रतिशत प्रतिनिधित्व देकर दलितों की पार्टी न होकर अन्य वर्ग की पार्टी होने का प्रोत्साहन दिया क्योंकि मायावती को दलित वर्ग का मत तो पहले से ही प्राप्त था इसलिए उसने अन्य वर्गो को प्रोत्साहन देकर अपने मत बैंक को मजबूत किया।[21]

उत्तर प्रदेश में मायावती की सरकार 6 महिने रही। लेकिन मत बैंक को बढ़ाने की राजनीति

---

18 Ibid., pp. 131-132.
19 Ibid., pp. 134-135.
20 Ibid., p. 137.
21 Ibid., pp. 141-145.

के सिवाय कानून व शासन व्यवस्था को देखा जाये तो राष्ट्रपति शासन और मायावती के शासन में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। मायावती के कार्य काल के दौरान लूट, अपहरण, हत्या, बलात्कार आपराधिक घटनाओं का ग्राफ बढ़ा, मायावती ने अपना अधिकतर समय नये जिले और तहसील बनाने में व्यतीत किया। उसके समय में जिलो की संख्या 69 से बढ़कर 80 हो गई। इसी के साथ उसने 1200 करोड़ रुपए अतिरिक्त खर्च किया। उसने 6 महिने में 500 से अधिक आई.ए.एस., आई.पी.एस., पी.सी.एस. के तबादले किये। उसने अपने मत वोट बैंक को बढ़ावा देने के लिये अति पिछड़ी जातियों के नायकों के नाम का नामकरण कराया।[22] जिससे कहा जा सकता है कि बसपा की सरकार फायदे मन्द साबित हुई।

तीसरी बार बसपा और भाजपा का अल्पमत गठबंधन (Minority Coalitions)

2002 के विधानसभा चुनावों में बसपा और भाजपा का गठबंधन फिर दिखाई देने लगा और लोगों के मुख से यह निकलने लगा कि 'यू.पी. की मजबूरी मायावती जरूरी' जैसे नारे लगने लगे वास्तव में भाजपा की मजबूरी थी क्योंकि केन्द्र में 2004 के चुनावों के लिये भाजपा समझौता करना चाहती थी। क्योंकि उसको उत्तर प्रदेश में लोकसभा चुनावों से जो लाभ प्राप्त होने वाला था वह विधानसभा चुनाव से नहीं हुआ था। सपा पार्टी से वह समझौता करने की स्थिति में नहीं थी।[23] बसपा से गठबंधन करने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं रहा। सहारा समाचार–पत्र ने यह प्रकाशित कर दिया था कि रविवार 21 अप्रैल तक भाजपा बसपा का गठबंधन हो जाने की सम्भावना है उच्च वर्गीय नेताओं की सहमति बन चुकी है इस स्थिति में मायावती फिर उत्तर प्रदेश की मुख्यमन्त्री बनने वाली हैं।[24]

उत्तर प्रदेश में 202 सदस्यों की आवश्यकता ने बसपा के 97 और भाजपा के 88 सदस्य थे। इसके अलावा भाजपा के सहयोगी लोकदल में 14 विधायक थे और भाजपा के अन्य सहयोगियों को मिलाकर इनकी संख्या 107 होती थी जिससे इस गठबंधन में निर्दलीय उम्मीदवारों का भी

---

22 कन्हैयालाल चंचरीक, Op.cit., (9), p. 216.

23 Ibid., p. 226.

24 Ibid., p. 228.

साथ मिल जाने से यह गठबंधन 2002 के आंकडों को भी पार कर गया[25] और भाजपा में हाईकमान के नेताओं ने अपने-अपने राज्य में प्रबल विरोध के बाद भी बसपा के साथ सरकार बनाने का निर्णय लोकसभा चुनावों के मद्देनजर दीर्घकालिक की रणनीति के तहत किया। यह बसपा-भाजपा गठबंधन नीतिगत न्यूनतम साझे कार्यक्रम वाला गठबंधन था। इस गठबंधन से सामाजिक राजनैतिक विकास होने से, आने वाले परिणाम सकारात्मक हुए।

मायावती की एक परेशानी दलित एजेंडे को लेकर थी क्योंकि वह दलित मत को मजबूत करना चाहती थी इसी के कारण भाजपा ने पहले 1995 में अपना समर्थन वापिस लिया था। उसका प्रतिरोध 1997 का गठबंधन था। 2002 का गठबंधन दोनों दलों की नीतियों एवं उनके कार्यानुभवों को लेकर अलग-अलग किया गया था, जो अपने-अपने मतदाताओं की नाराजगी से दूर किया जा सकता था क्योंकि पिछले गठबंधन को लेकर भाजपा नाराज थी। जिसके कारण वह अपने मत बैंक को कम कर चुकी थी। चुनावी रणनीति उसके लिये घोर विरोधी हो चुकी थी।[26]

भाजपा को यह भय सता रहा था कि ऊंची जाति के मतदाता उससे नाराज न हो जाये। जिसके कारण उसका मत बैंक कम हो सकता था। बसपा ने जातिगत समीकरण के गठबंधन की राजनीति से अत्यधिक लाभ उठाया। उसने 2002 में भाजपा के साथ गठबंधन कर मन्त्रियों के चयन में जातिगत सहारा लिया जैसे कि पिछड़ी जाति के चार लोगों को मन्त्री पद की शपथ दिलाई गई। उसी के साथ दो अनुसूचित जाति तथा एक अल्पसंख्यक वर्ग व तीन सवर्णों वर्गों को भी खुश करके रखा। पांच वर्ष पहले भी उसने ब्राह्मण और ठाकुर का ख्याल रखा था।[27]

इस बार उसने सवर्ण व पिछड़ी जाति के लिये अधिक स्थान दिया क्योंकि दलित वर्ग तो उसके पक्ष में आ ही रहा था लेकिन बसपा को सवर्ण वर्ग का मत बैंक बनाना था भले ही सैद्धान्तिक दृष्टि से बसपा-भाजपा का ताजा गठबन्धन अवसरवादिता राजनीति

---

25 अजय बोस, Op.cit., (1), pp. 212-213.

26 कन्हैयालाल चंचरीक, Op.cit., (9), p. 219.

27 अमिताभ कुमार मिश्रा, Op.cit., (2), p. 227.

का एक नमूना कहा जा सकता है लेकिन फिर भी खण्डित जनादेश के चलते इससे अच्छा विकल्प और कोई हो ही नहीं सकता था। बसपा-भाजपा जिस परिस्थिति के कारण सत्ता ग्रहण कर रही थी। उसमें पहले वाला गठबंधन बसपा के लिए ज्यादा अनुकूल नहीं रहा था क्योंकि पहले अवसरवादिता का जो दाग बसपा पर लगा। वह एक आन्तरिक मतभेद की समस्या से जोड़कर उसको खत्म कर दिया गया जिसके कारण दोनों दलों को अनेक हानियां उठानी पड़ी। भाजपा का उच्च जातीय मतदाता नाराज हो गया। मायावती को अपने दल के अन्दर असन्तोष झेलना पड़ा। क्योंकि गुजरात की हिंसा को देखते हुए मायावती की मुश्किले और बढ़ने लगी। दूसरी तरफ मायावती से मुस्लिम समर्थक इस बात से भी नाराज हुआ क्योंकि मायावती ने चुनाव पूर्ण भाजपा से दूरी बनाये रखने का जोर-सोर से प्रचार किया था लेकिन ऐसा नहीं कर सकी।

नरेन्द्र मोदी गुजरात के दंगों में मुस्लिम समुदाय की रक्षा नहीं कर सके। जिससे मुस्लिम समुदाय के अन्दर असन्तोष पैदा हो रहा था। बसपा की सिद्धान्तहीन राजनीति के कारण भी मुस्लिम समुदाय नाराज होता जा रहा था।[28] क्योंकि भाजपा हिन्दुवादी पार्टी थी जबकि बसपा दलित और मुस्लिम समर्थक बनकर भाजपा से गठबंधन कर रही थी। एक बहस की बात यह है कि दलित वर्ग को सही नेतृत्व नहीं मिल पा रहा था क्योंकि आजादी से पहले अम्बेडकर ने स्वतन्त्र श्रमिक दल का निर्माण किया। उसके बाद संघ एवं रिपब्लिकन पार्टी को बनाया गया। अम्बेडकर के समय को देखा जाये तो उन्होंने दलित वर्ग के लिये अलग पहचान बनायी। इस मिशन को बसपा ने आगे बढ़ाया लेकिन परिस्थितियों ने उसकी नीतियों को अजीबोगरीब बना दिया। जिसके कारण यह कुल मिलाकर बसपा अवसरवादी राजनीति से प्रेरित हो गई जिससे इसकी कोई एक विचारधारा न होकर समय-समय पर बदलती रही।

विधानसभा चुनाव-2007 और बसपा की एक दलीय बहुमत सरकार (Single Party Majority Govt.)

उत्तर प्रदेश में जातिय राजनीति का अधिकतर बोलबाला रहा है। जैसे कि जातिय आधार

---

28 आर. चन्द्रा, कन्हैया लाल चंचरीक, *आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन,* यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 228-229.

पर दलगत राजनीति रही है जैसे कि बसपा और सपा में दलित और पिछड़े वर्ग का बटवारा रहा है उत्तर प्रदेश में भाजपा उच्च वर्गीय पार्टी एवं हिन्दुत्ववादी पार्टी रही है। बसपा, दलित वर्गीय पार्टी तो सपा अन्य पिछड़े वर्गों वाली पार्टी रही है और कांग्रेस की कमान भी उच्च वर्गों के लोगों के हाथ में रही हैं। परन्तु गठबंधनों का दौर उत्तर प्रदेश में एक लम्बी राजनीतिक अस्थिरता से गुजर रहा है[29]।

बसपा ने मतदाताओं के जातिय आधार को 2007 के विधानसभा चुनावों में खत्म कर दिया और उसने दो जातियों को एक मंच पर खड़ा कर दिया जो एक दूसरे के विपरीत थी। बसपा ने ब्राह्मण और दलित गठबंधन से यह सिद्ध कर दिया कि समुचित दार्शनिक विचारधारा मूलक एवम रणनीतिक प्रयास से असम्भव को भी सम्भव बनाया जा सकता है। इसका परिणाम इतना सकारात्मक हुआ कि बसपा को 2007 के चुनाव में एक दलीय बहुमत की सरकार का गठन किया। ऐसा करने के लिये मायावती ने बहुजन की अवधारणा का परित्याग कर उसको सर्वजन की अवधारणा में बदल दिया। सर्वजन की अवधारणा को स्वीकार करने से उसने अम्बेडकर की विचारधारा से भी वह हटती दिखाई दी, क्योंकि अम्बेडकर बहिर्वेशी राजनीति के प्रणेता थे। अम्बेडकर का विचार था कि वे दलितों को हिन्दु समाज से अलग करके एवं उन्हें बौद्ध धर्म स्वीकार करा कर एक अलग पहचान बनाने का प्रयास करते रहे, और उन्होंने स्वयं ऐसा ही किया। लेकिन गांधी इनका विरोध करते हुये उन्हें हिन्दु समाज का अभिन्न अंग के रूप में बनाये रखने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा थे।

बसपा के लिये एक बात आश्चर्यचकित करने वाली रही क्योंकि वह 30.4 प्रतिशत मतों पर ही 206 सीट प्राप्त करने में सफल रही लेकिन इसके विपरीत देखा जाये तो सपा को 2007 के चुनावों में वोटों का कोई नुकसान नहीं हो सका। इसके साथ ही बसपा के द्वारा प्रयोग में आये गये सैण्डविच गठबंधन के सिद्धान्त को समझना अति आवश्यक है जो निम्नलिखित है–

समावेशी राजनीति एवं सामाजिक परासरण का सिद्धान्त

[29] A. K. Varmar, Reverse Social Ashmashis In Uttar Pradesh, *Ecoomic And Political Weekly*, 10 March 2007, pp. 817- 820.

बसपा ने 1989 से 1999 तक अम्बेडकरवादी बहिर्वेशी राजनीति का प्रयोग किया। लेकिन उसके साथ-साथ उसकी विचारधारा में परिवर्तन होने लगा। उसके बाद इन्होंने गांधीवादी समावेशी राजनीति का प्रयोग किया। बहिर्वेशी राजनीति को अंजाम देने के लिये बसपा ने सामाजिक परासरण के सिद्धान्त का प्रयोग किया। परासरण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जब दो असमान तरलता वाले द्रव्यों को एक अर्द्धपारगम्य झिल्ली से अलग-अलग किया जाता है तो परासरण दबाव के कारण द्रव्य का प्रवाह तरल से सघन की ओर होता है जिससे झिल्ली के दोनों ओर द्रव्य का स्तर समान हो जाता है। (चित्र 1.2) सामाजिक परासरण इसी सिद्धान्त का समाज में प्रयोग है। चित्र 3.4 में हमें सामाजिक परासरण दिखाई देता है बसपा एक दलित आधारित पार्टी के रूप में बनायी गई जो सघन दलित क्षेत्र को व्यक्त करती है।[30]

चुनावी प्रक्रिया की अर्द्धपारगम्य झिल्ली को भेदकर तरल समाज से दलितों का पलायन सघन क्षेत्र बसपा की ओर हुआ जिससे बसपा का ग्राफ तेजी से बढ़ा। इसी सिद्धान्त का प्रयोग करके सपा का भी पिछड़ों को गोल बन्द करने का प्रयास सफल रहा। लेकिन बसपा और सपा दोनों ही बहुमत से काफी दूर रही। यह आश्चर्यजनक है कि 1993 व 1996 दोनों ही विधानसभा चुनावों में बसपा को 67-67 सीटें व 11 प्रतिशत वोट मिले बसपा ने बहिर्वेशी राजनीति का परित्याग कर समावेशी राजनीति की ओर कदम बढ़ा दिया।

21वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उत्तर प्रदेश में एक समावेशी राजनीति का सूत्रपात हुआ है। इस प्रयास के लिये बसपा ने अनेक तरह के प्रयोग किये जिन प्रयोगों से बसपा ने समावेशी राजनीति को अमली जमा पहनाने का प्रयास किया है। इन प्रयोगों से बसपा ने प्रतिलोम सामाजिक परासरण के सिद्धान्त का प्रयोग किया। प्रतिलोम परासरण वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें सघन द्रव्य अर्द्धपारगम्य झिल्ली से लेकर तरल द्रव्य की ओर जाता है क्योंकि यह परासरण के सिद्धन्त के प्रतिकूल है। इसमें हमें सघन क्षेत्र के द्रव्य पर दबाव का प्रयोग करना पड़ता है। (चित्र 5.6) और बसपा ने ऐसा ही किया। बसपा में ब्राह्मण काफी कम संख्या में थे।

---

[30] अरविन्द मोहन, *लोकतंत्र का नया लोक : चुनावी राजनीति में राज्यों का उभार,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 243-244.

अत: जिससे कि वह उच्च जातियों के लिये तरल क्षेत्र था। फिर मायावती व बसपा ने ब्राह्मण जोड़ों सम्मेलन व 'ब्राह्मण-दलित भाईचारा बनाओ' समितियों के माध्यम से दबाव बनाकर उन्हें बसपा की ओर भेजा। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर प्रदेश में 2002-2007 के विधानसभा चुनावों के बीच कुछ 40 प्रतिशत अधिक उच्च जातियां बसपा की ओर चली गई। इसमें ब्राह्मण, वैश्य व अन्य उच्च जातियों में प्रत्येक का समर्थन 11 प्रतिशत और बढ़ गया 7 प्रतिशत ठाकुरों ने भी उसे वोट दिया। चित्र (7-8) जिससे इसका परिणाम यह निकला कि बसपा 403 सीटों में से 206 सीटें जीत कर उत्तर प्रदेश में अपना बहुमत सिद्ध करके सरकार बना सकीं।

सैण्डविच गठबन्धन का सिद्धान्त

सैण्डविच गठबन्धन[31] को एक सामाजिक गठबन्धन का नाम दिया जाता है जिसमें सामाजिक पदसोपानीय संरचना के शीर्ष पर ब्राह्मण और निचले स्तर पर दलित वर्ग का गठजोड़ हो जाता है तथा उसमें अन्य सामाजिक घटकों को भी शामिल कर लिया जाता है इस सैण्डविच गठबंधन में एक तरफ से देखने पर ब्राह्मण, दूसरी तरफ से देखने पर दलित शीर्ष पर दिखाई देता है। लेकिन कांग्रेस के शुरूआती 'इन्द्रधनुषीय गठबन्धन' के प्रतिकूल इस गठबन्धन की प्रकृति कोमल व अस्थायित्व के भाव से परिपूर्ण है। कांग्रेस का जो इन्द्रधनुषीय गठबंधन है उस गठबंधन में समाज के सभी वर्गों से इसका जुड़ा होना पाया जाता है जबकि सैण्डविच गठबन्धन एक प्राकृतिक रचना है जिसमें जो भी घटक होता है उसका पारस्परिक जुड़ना अस्थायी होता है। अत: बसपा का प्रदेश में समावेशी प्रयोग कोई स्थायी घटना नहीं कही जा सकती। सोशल इंजीनियरिंग की दृष्टि से सैण्डविच गठबंधन एक विलक्षण प्रयोग है। इस सोशल इंजीनियरिंग को दो भागों में बांटा जा सकता है। (1) बाह्य (2) आन्तरिक

बाह्य सोशल इंजीनियरिंग को दो भागों में बॉटा जा सकता है पहला शीर्ष सोशल इंजीनियरिंग, इस इंजीनियरिंग में ब्राह्माण जोड़ों का प्रयास शामिल किया जाता है। चित्र 9-10 में दर्शाया गया है। दूसरा आधार सोशल इंजीनियरिंग के द्वारा 'ब्राह्मण-दलित भाईचारा' समितियों के

---

[31] A.K Verma, Mayavati's Sandwich Coalition, *Economic And Political Weekly*, 2 June, 2007, pp.2039-2043.

माध्यम से ब्राह्मणों वर्ग को दलितों से जोड़ने का प्रयास किया गया है जो चित्र: 11 में दर्शाया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मा सोशल इंजीनियरिंग से बसपा ने मायावती-ब्राह्मण दलित समाज को एकाकार कर दिया। चित्र-12 में दर्शाया गया है।

परासरण

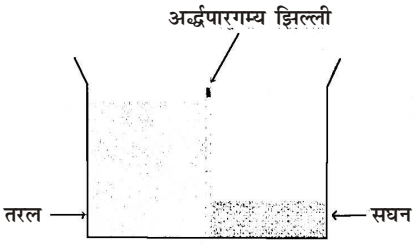

1

परासरण

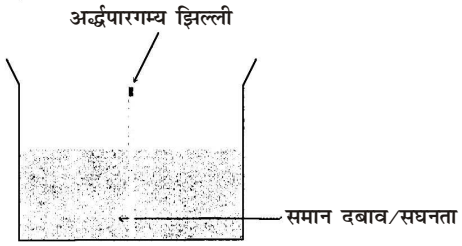

2

दलितों का सामाजिक परासरण

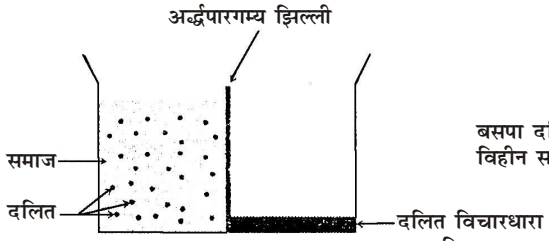

3

दलितों का सामाजिक परासरण

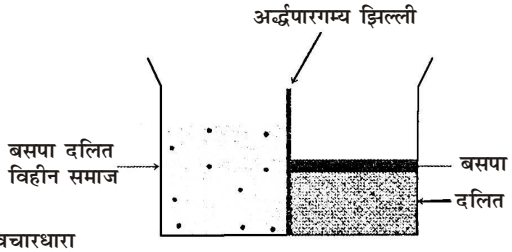

बसपा का बढ़ता जनाधार

4

प्रतिलोम परासरण

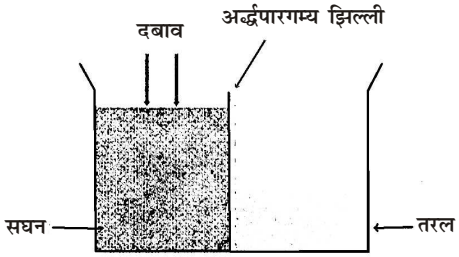

5

प्रतिलोम परासरण

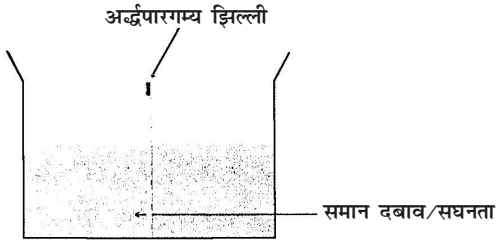

6

बसपा में प्रतिलोम सामाजिक परासरण

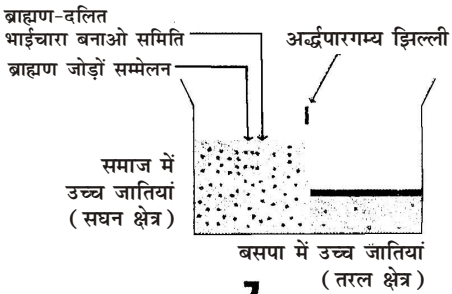

7

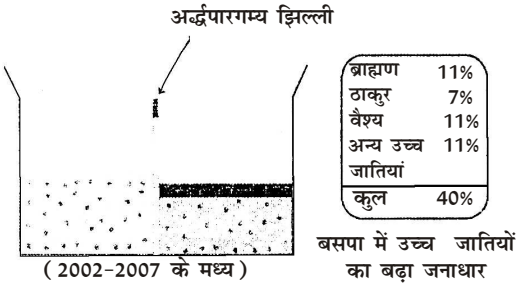

ब्राह्मण	11%
ठाकुर	7%
वैश्य	11%
अन्य उच्च जातियां	11%
कुल	40%

बसपा में उच्च जातियों
का बढ़ा जनाधार

8

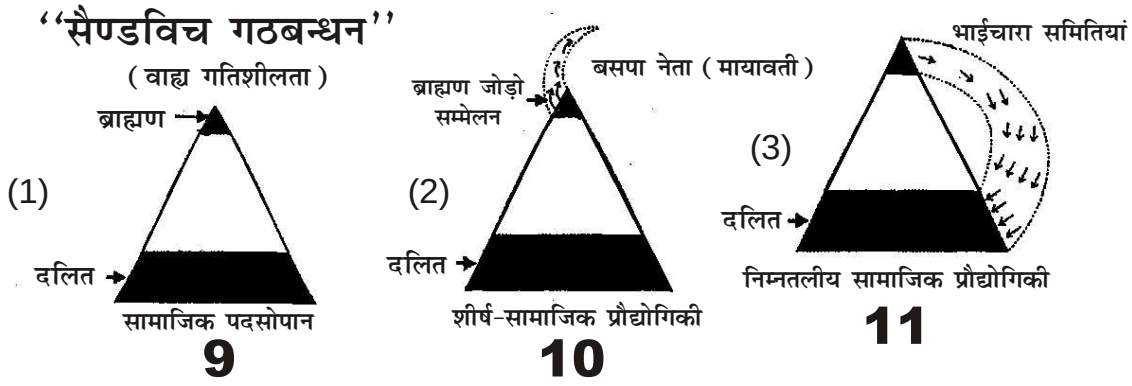

"सैण्डविच गठबन्धन"

(वाह्य गतिशीलता)

(1)

सामाजिक पदसोपान

9

(2)

शीर्ष-सामाजिक प्रौद्योगिकी

10

(3)

निम्नतलीय सामाजिक प्रौद्योगिकी

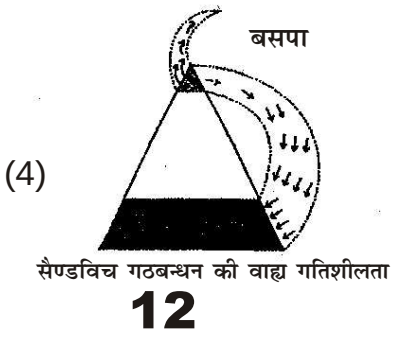

11

(4)

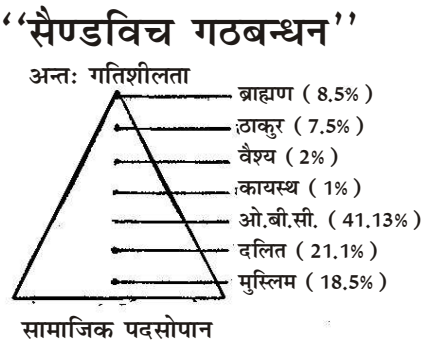

सैण्डविच गठबन्धन की वाह्य गतिशीलता

12

"सैण्डविच गठबन्धन"

अन्तः गतिशीलता

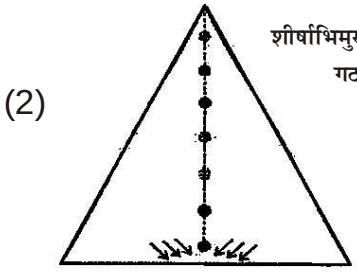

सामाजिक पदसोपान

13

(2)

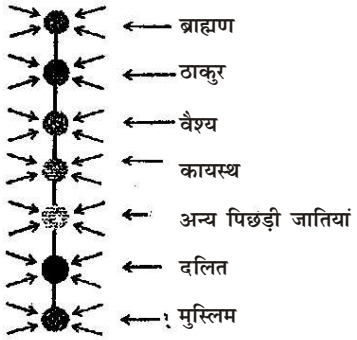

निर्वाचन क्षेत्र में विजय हेतु वांछित चुनावी वज़न

14

(3)

विभिन्न जाति समूहों में सामाजिक परासरण

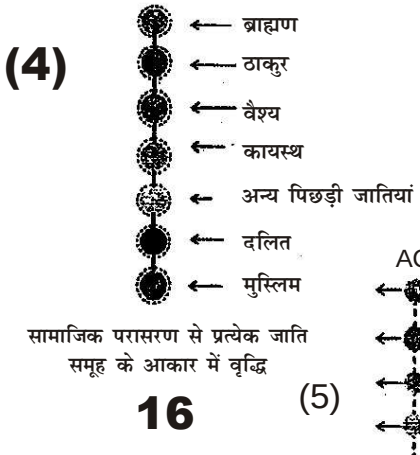

15

(4)

सामाजिक परासरण से प्रत्येक जाति समूह के आकार में वृद्धि

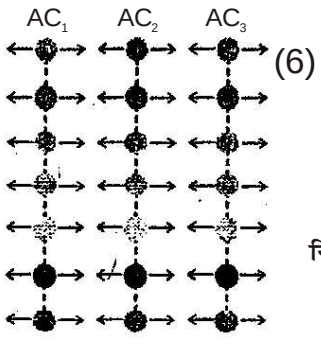

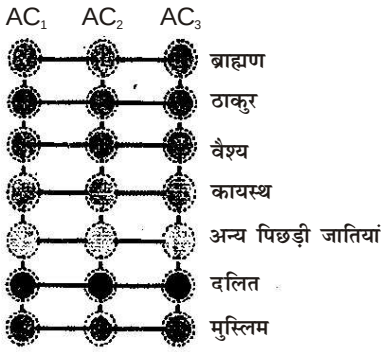

16

(5)

17

(6)

निकटस्थ निर्वाचन क्षेत्रों में जाति समूहों का बढ़ता जुड़ाव

18

आन्तरिक सोशल इंजीनियरिंग के भी दो भाग है पहला ऊर्ध्व सामाजिक गठबन्धन द्वितीय क्षैतिजीय सामाजिक गठबंधन। चित्र-13 में उत्तर प्रदेश के मतदाताओं का पदसोपानीय स्वरूप व प्रतिशत दिखाया गया है। जब कोई दल प्रयास करके इन पदसोपानीय मतदाताओं को एक लाईन में अपने पक्ष में खडा कर देता हैं तो वह एक ऊर्ध्व सामाजिक गठबन्धन बना लेता है। यह गठबंधन उस दल को विजय के लिये वांछित ताकत देता है। सामाजिक परासरण से प्रत्येक जाति समूह का आकार बढ़ता है और वे पारस्परिक आकर्षण से एक ऊर्ध्व लम्ब की रचना बनती है जो कि चुनाव में विजय के लिये अति आवश्यक है जिसे चित्र 14-16 में दर्शाया गया है। यही प्रवृत्ति क्षैतिजीय स्तर पर होती है और सामाजिक परासरण से न केवल जाति समूहों के आकार बढ़ते हैं बल्कि अपने से जुड़े क्षेत्रों में वे पारस्परिक जुड़ाव की ओर अग्रसर होते हैं क्षैतिजीय सामाजिक गठबंधन से किसी भी दल का मत प्रतिशत में इजाफा बढ़ता है पर उसे विजय के लिये वांछित वजन ऊर्ध्व सामाजिक गठबंधन से ही मिलता है। बसपा की आश्चर्य जनक विजय के लिये ऊर्ध्व एवं क्षैतिजीय सामाजिक गठबंधनों की जटिल संरचना जिम्मेदार रही है। चित्र 17-18 से यह प्रमाणित होता है कि 2007 के चुनावों में बसपा की सीटों में ईजाफा दिखाई दिया जिसमें सभी जातियां शामिल हुई। (ब्राह्मण + 11, 61 कुर + 7 वैश्य + एम. 6 वैश्य + 11, अन्य उच्च जातियां + 11, जाट + 13, यादव + 2, कुर्मी + 6, लोधी + 7 अन्य किसान + 15, जाटव + 6, मुस्लिम + 7) इसी के साथ-साथ 70 से 66 जिलों में बसपा का जनाधार बढ़ा है यही कारण है कि कम मतों के बावजूद बसपा को पूर्ण बहुमत मिला। उत्तर प्रदेश में समावेशी राजनीति का मॉडल लोकतांत्रिक सफलता की असीम संभावनाओं से भरा है। यह बात महत्वपूर्ण है कि प्रतिलोम सामाजिक परासरण व सैण्डविच गठबन्धन के सिद्धान्त बसपा के लिये ही महत्वपूर्ण साबित न हुये। सभी दलों ने अच्छी भूमिका निभाई है।

2012 का विधानसभा चुनाव और मायावती सत्ता से बाहर

मायावती 2007 के विधानसभा चुनावों में 206 सीटें प्राप्त कर सत्ता में आयी वह एक सामाजिक प्रौद्योगिकी का कमाल था लेकिन 2012 के विधानसभा चुनावों में मायावती ने

चुनावपूर्व लखनऊ में मुस्लिम, क्षत्रिय, वैश्य, तीन समुदायों की रैलियों का आयोजन कर यह साबित कर दिया था कि वे क्षत्रिय, वैश्य की तो हितैसी बनी रही है पर मुस्लिम वर्ग को आरक्षण का लालच देकर उनको अपने पक्ष में किया।[32] यही कारण था कि 2007 के चुनावों में मायावती की असाधारण जीत के पीछे करीब 34 प्रतिशत के आसपास अति पिछड़े वर्गों के वोटों और ऊंची जातियों जिनमें 17 प्रतिशत ब्राह्मण और 12 प्रतिशत राजपूत वर्ग की भूमिका रही।[33] इसके लिये मीडिया का फोकस केवल ब्राह्मण वोटों के ऊपर था। इस सीट में अति-पिछड़े वर्ग की निर्णायक भूमिका रही। 2012 के विधानसभा चुनाव में इसको सबसे बड़ी चुनौती थी कि 22 मंत्रियों को मन्त्रिमण्डल से निकाल दिया गया। उसी के साथ ही साठ फीसदी मौजूदा विधायकों का टिकट काटे गये।[34] यह मायावती के सामने मजबूरी थी क्योंकि उसके ऊपर भ्रष्टाचार के आरोप लगते रहे और एक आरोप यह भी लगा कि उसने दलित पार्कों के नाम काफी पैसा खर्च किया है।[35]

एक नकारात्मक पक्ष यह भी देखा जा सकता है कि जातिगत राजनीति की ज्यादा समय की आयु नहीं होती वह एक दिन धरासायी हो ही जाती है। 2012 के चुनाव में सपा की जीत बसपा की हार में अन्य पिछड़े वर्ग वह मुस्लिम वर्ग का बसपा समर्थन नहीं पा सकी। उसी के साथ ब्राह्मण वर्ग से भी 2007 के चुनावों की अपेक्षा समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

मायावती का गिरता हुआ वोट बैंक

मायवती अपने गिरते हुये वोट बैंक के लिये खुद जिम्मेदार रही है क्योंकि सबसे पहले अम्बेडकर का मिशन जाति विरोधी था अब उसे जातिवादी बना दिया गया। इसी के साथ उसने अपनी विचार धारा को पुन:परिभाषित करके भाजपा एवं कांग्रेस से गठबंधन करती रही।

प्रो. तुलसीराम कहते है कि वह एक तानाशाह के रूप में उभरकर आयी। दूसरी पंक्ति के नेतृत्व

---

32 *दैनिक भास्कर,* नई दिल्ली, 19 दिसम्बर, 2011, पृ. 6.

33 Ibid., 6 मार्च, 2012, पृ. 8.

34 Ibid., 24 नवम्बर, 2011, पृ. 7.

35 Ibid., 18 जनवरी, 2012, पृ. 7.

को मायावती ने कभी भी उभरने का मौका नही दिया। आज के लोकतांत्रिक विकास के समय में किसी भी राजनीतिक दल के तानाशाही होने पर उसकी हार होना स्वाभाविक है। अपराधियों को नियंत्रण में करने के वायदे करने वाली मायातती ने बड़े-बड़े माफियाओं को टिकट देकर जिताया था। कैबिनेट में एक-तिहाई से ज्यादा मंत्री माफिया ही थे। कुल मिलाकर कहा जाये तो बसपा ने एक गैर-लोकतांत्रिक पार्टी के रूप में खुद को स्थापित किया। न जाने किसके कहने पर उन्होंने अपनी और अपने परिवारजनों की मूर्तियाँ लगवाना शुरू किया और कांशीराम के कार्यो को नजर अन्दाज करती रही।[36] जिसके कारण वह खुद अपने गिरते हुये वोट बैंक के लिये जिम्मेदार बनी। जो सारणी-1 व -2 मे दिये गये आकड़े बताते है कि उसका वोट बैंक 2005 के बाद कुछ राज्यों में गिरना शुरू हुआ। तो वही उत्तर प्रदेश में 2012 के विधान सभा चुनावों में 206 सीट जीतने वाली अब 80 पर ही सिमट कर रह गयी। इस मिशन में उसकी राणनीति ही जिम्मेदार बनी क्योंकि बसपा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को पुन:परिभाषित करके सत्ता प्राप्त करती रही है।

[36] Ibid., 5 मार्च 2012. पृ. 7.

सारणी न.-1

बसपा का राज्यों की विधानसभाओं में गिरता हुआ वोंट बैंक

राज्य	राज्यों में चुनाव का समय	राज्यों की विधान सभाओं का वोट प्रतिशत	सीट	चुनाव का समय	राज्यों के चुनाव का वोट प्रतिशत	सीट
राजस्थान	208	7.60	6	2013	3	3.37
उत्तराखण्ड	2007	11.76	8	2012	3	12.19
मध्य प्रदेश	2008	8.97	7	2013	4	6.29
हिमाचल प्रदेश	2007	7.40	1	2012	0	1.7
हरियाणा	2009	6.73	1	2014	1	4.4
बिहार	2005	4.17	4	2010	0	3.21
छत्तीसगढ.	2008	6.11	2	2013	1	4.27
दिल्ली	2008	14.05	2	2013	0	5.33
पंजाब	2007	4.13	0	2012	0	4.28
झारखण्ड	2009	2.44	0	2014	1	1.4

(Source, Election of commission India)

इसका प्रभाव अन्य राज्यो पर भी पड़ा जैसे कि राजस्थान, उत्तराखंड, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, पंजाब, झारखण्ड, इन राज्यों के नवीनतम चुनावों में बसपा का वोंट बैंक कम होता दिखाई देता है। जो सारणी नं.-3 इस बात को प्रदर्शित करती है

बसपा के गिरते हुये वोट बैंक का इस अध्याय में वर्णन किया है साथ ही उत्तर प्रदेश के विधानसभा के चुनावों में गिरते हुये वोट बैंक के लिये मायावती खुद जिम्मेदार रही है क्योंकि 2012 के विधानसभा चुनावों से पहले उसने 22 मंत्रीयों की विदाई और साठ फीसदी मौजूदा विधायकों के टिकट काटे। उससे मायावती को लगा की उसकी मजबूती इसी में है पर इसका उलटा हुआ। जैसे कि चुनाव के मौके पर यह कार्य करके हंगामा हुये। इन हंगामो से बचने के लिये मायावती के पास न तो उसकी कोई मजबूत विचारधारा रही। उस पर पहले भी अम्बेडकर की विचारधारा को पुन:परिभाषित करने के आरोप लगते रहे हैं और न उसका मजबूत संगठन बन सका। उसकी ताकत भी मुख्य रूप से यही है कि वे अपना वोट ट्रांसफर कराने की क्षमता रखती हैं और यह वोट भी मुख्य रूप से जाति आधारित रहा है। जाति आधारित राजनीति ज्यादा समय तक नही चलती जिसका हाल 2012 के विधानसभा चुनावों में देखने को मिला[37] यही बसपा का हाल 2014 के लोकसभा चुनावों में देंखने को मिला।

[37] Ibid., 5 जनवरी, 2012 पृ. 7,

सारणी न.-2

बसपा का उत्तर प्रदेश की विधानसभाओं का वोट बैंक 1989 से 2012 तक।

चुनाव का समय	सीटों की संख्या	जीती हुई सीटे	वोटो की संख्या	वोट प्रतिशत	सीटों के अनुसार प्रतिशत
1989	372	13	3,664,417	9.41	10.42
1991	386	12	3,532,683	9.44	10.26
1993	164	67	5,554,076	11.12	28.53
1996	296	67	10,890,716	19.64	27.53
2002	401	98	12,374,388	23.06	23.19
2007	403	206	15,872,561	30.43	30.43
2012	403	80	19,647,303	25.91	25.95

(Source Election of commission India)

मोहनदास नैमिशराम अपनी पुस्तक में कहते है कि जून, 1994 के बाद कई बड़े नेता बसपा से अलग होते चले गये जैसे कि उस समय शिक्षामन्त्री रहे मसूद अहमद जिन्हें काशीराम के कहने पर मुलायम सिंह यादव ने अपने मन्त्रिमण्डल से हटा दिया था। उन्होंने दो विधायको और बसपा के कई जिला स्तर के नेताओं को पार्टी से निकाल दिया था। फिर 2 जून को जब मायावती ने सपा सरकार से समर्थन वापस लिया तो बसपा के कैबिनेट मंत्री राजबहादुर ने नौ विधायकों के साथ पार्टी से अलग विभाजन कर लिया। उसके कुछ समय बाद कुर्मी नेता सोनलाल पटेल ने भी बसपा से इस्तीफा दे दिया। जिससे बसपा धीरे-धीर कुर्मी जाति का समर्थन खोती जा रही थी। बसपा के निष्कासित नेताओं ने 'बहुजन समाज' दल के नाम से एक पार्टी की घोषणा की। प्रदेश अध्ययक्ष जंगबहादुर पटेल ने संवाददाताओं को बताया कि वह नई पार्टी के संयोजक बनेंगे और इन्होंने बसपा पर आरोप लगाया कि मायावती की पार्टी बनकर रह गयी है उन बसपा नेताओं का पक्ष बिना सुने ही काशीराम ने पार्टी से निकाल दिया जिससे उन्हें नया दल बनाने के अलावा और कुछ उचित न लगा लेकिन हमारी पार्टी बसपा के

सिद्धान्तों को नहीं छोड़ेगा[38]

इसी प्रकार देखा जाये तो ब्राह्मणवादी विचार धारा वाली पार्टियो से लड़ने वाला दल आपसी झगड़े से ही उलझ गया जिसके कारण वह संयुक्त मोर्चा नहीं बना सका। बसपा से अलग हुए दल नेता डा. मसूदअहमद (भारतीय लोकतांत्रिक मोर्चा) जंगबहादुर सिंह पटेल (बहुजन समाज दल) एवं डा. सोन लाल पटेल, (अपना दल) का अलग-अलग अस्तित्त्व और पहचाान कायम कर ली। पर आगे धीरे-धीरे इनका प्रभाव कम होता चला गया। लेकिन उसके कुछ समय बाद बसपा ने भाजपा के साथ मिलकर एक गठबंधन की सरकार बनाई और मायावती मुख्यमंत्री बनी।[39]

बहुत से बुद्धिजीवियों ने जहाँ कांशीराम और मायावती दोनो की सहमति से भाजपा के साथ मिलकर सरकार बनाने के कारण उस पर अवसरवाद का आरोप लगाया। क्योंकि शासक वर्ग इस साजिश में सफल हुआ। इस साजिश को सफल बनाने में सबसे ज्यादा 1999 के लोक सभा चुनावों में बसपा का गैर-ओबीसी मत बैंक कम होता दिखाई दिया और साथ ही कुर्मी जातियों ने इस दल को छोड़ दिया, जबकि मुख्य रूप से कुर्मी नेताओं के विभाजन के कारण जैसे राजबहादुर एवं जंगबहादुर ने क्रमशः 'बसपा (आर.)' एवं 'बहुजन समाज दल' का निर्माण किया और बसपा के अन्य कुर्मी नेता सोनलाल पटेल ने 'अपना दल' का निर्माण किया और कोरी जाति के एक भाग ने इसका समर्थन किया, जिसके कारण बसपा का वोट बैक दिन प्रतिदिन कम होता गया।

---

[38] मोहनदास नैमिशराय, *बहुजन समाज,* नीलकंठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 174.

[39] Ibid., p. 175.

सारणी न.-3

लोकसभा चुनावों में बसपा का वोट बैंक 1989 से 2014 तक

लोकसभा	भारत में सामान्य चुनाव	सीट पर लडे चुनाव	सीट जीती	वोट प्रतिशत
9वी लोकसभा	1989	245	03	2.07
10वी लोकसभा	1991	231	02	1.61
11वी लोकसभा	1996	210	11	4.02
12वी लोकसभा	1998	251	05	4.67
13वी लोकसभा	1999	225	14	4.16
14वी लोकसभा	2004	435	19	5.33
15वी लोकसभा	2009	500	21	6.17
16वी लोकसभा	2014	503	0	4.3

(Source Election commission of India)

सुधा पाई ने यह तर्क दिया है कि इन विभाजनों का कारण कांशीराम एवं बसपा के ओबीसी(OBC) नेताओं के मध्य आन्तरिक तनाव था। पाई के अनुसार 1990 के मध्य में कांशीराम का मत था कि अन्य पिछड़े हुए उतने अधिक राजनीतिकृत नहीं है जितने कि दलित, उनमें एक मजबूत नेतृत्त्व तथा सवर्ण हिन्दुओ से लड़ने के लिए एकता की आवश्यकता ही नही है।[40] क्योंकि मायावती के गठबंधन की राजनीति का सिद्धान्त मजबूत नहीं बना सकी। बसपा के अन्तरिक मामलों के कारण कुछ दलित वर्ग व अन्य पिछड़ा वर्ग भी इससे दूर होता चला गया। जो सरणी-1,2,3 बसपा के गिरते हुये मत बैंक को दर्शाता है। आगे चल कर उनकी राजनीतिक चुनौतियॉ बड़ी होती चली गयी। गत चुनाव में उनकी दलित-ब्राह्मण गठबंधन वाली सोशल इंजीनियरिंग बुरी तरह फेल हो गयी। यह भी मिथक टूट गया की बसपा उत्तर प्रदेश के हर चुनाव में अपनी सीट बढ़ा लेती है जो कि 2012 का विधान सभा चुनाव हो या लोक सभा चुनाव 2014 का हो। इन चुनावों ने मायावती की उम्मीदो को ही खत्म कर दिया।[41]

---

[40] Sudha Rai, *Dalit Assettion and The Unfinished Democratic Revolution: The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh*, Sage Publication, New Delhi. 2002, p. 40.

[41] मोहन दास नैमिशराय, op.cit.,(38), p. 184.

कंवल भारती के विचार में बसपा का विभाजन सत्ता की महत्वाकांक्षाओं का परिणाम नहीं है और न इसके मूल में मायावती से असंतोष का कारण। उसकी सच्चाई यह है कि यह विभाजन जातिवाद की बुनियाद पर हुआ है। भारत के नीतिशास्त्र पर जाति का दुखद प्रभाव है। इसे अम्बेडकर ने बहुत नजदीक से अनुभव किया और उनका कथन आज भी व्यावहारिक सत्य दिखाई देता है कि सारी करुणा, सारी मैत्री और सारी संवेदनाएं जाति से शुरू होती है और जाति पर ही समाप्त होती है। लेकिन सहानुभूति है अपनी ही जाति के प्रति। ब्राह्मण ब्राह्मण को ही नेता मानेगा, कायस्थ कायस्थ का ही नेतृत्व स्वीकार करेगा। यही जातिवाद कांशीराम के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा रही। बसपा का विभाजन पिछड़ों और मुसलमान सदस्यों की 'चमार-सत्ता' के खिलाफ ऐसी अभिव्यक्ति रही, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। बहुजन समाज पार्टी में बिखराव का यह महत्वपूर्ण कारण रहा। जाति आधारित मानसिकता के चलते हुए दलित नेतृत्व को किसी भी स्थिति में स्वीकार नही किया जाता रहा है।[42]

कांशीराम और मायावती

कांशीराम एक चिंतक थे लेकिन फिर भी उनके पास राजनीति में चुनाव प्रक्रिया की कमजोरियों का लाभ उठाने की भी एक कला थी। कांशीराम की अवसरवादी राजनीति का लाभ उनकी गठबंधन सरकारों में देखा जा सकता है, क्योंकि कांशीराम ने साफ कहा है कि उन्हें अस्थिरता अच्छी लगती है। जितनी ज्यादा अस्थिरता होगी बहुजन समाज पार्टी उतनी आगे बढ़ सकती है। उनका विश्वास था कि कमजोर सरकार की उन्हें हमेशा जरूरत होगी। वह किसी भी दल के विरोधी नहीं थे उन्होंने साम्प्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता की बहस को बेमानी माना, बसपा ने पहली सरकार भाजपा की सहायता से बनायी यह भी एक कमजोरी का लाभ उठाना था। उस समय मायावती उत्तर प्रदेश में पार्टी का कार्य करती थी और कांशीराम अन्य प्रदेशों में पार्टी का विस्तार करने में लगे थे और मायावती पार्टी की उत्तराधिकारी भी थी।

---

[42] Ibid., p.172.

कांशीराम के बाद यह आन्दोलन बिखर जायेगा, पार्टी भी विभाजित हो जायेगी और राजनीति में अभिजन वर्ग मायावती को रूकने नहीं देंगे। लेकिन मायावती ने उत्तर प्रदेश में बहुमत सिद्ध करके सरकार बनायी और उसको पांच वर्ष तक चलाकर भी दिखाया। कांशीराम के समय उत्तर प्रदेश में दलित वोंट एक मुस्त बसपा को पड़ता था लेकिन वे वोट दलित चेतना के नाम पर ज्यादा थे। लेकिन मायावती ने दलित चेतना को संगठन के स्तर पर खड़ा कर दिया और यह संदेश दिया कि चुनाव में जीत या हार का दलित स्वाभिमान और दलित उत्थान पर असर पड़ेगा।

कांशीराम ने हमेशा ब्राह्मण जातियों के प्रति दलितों की नफरत को हवा दी थी और उस नफरत की बुनियाद पर अपने आन्दोलन को मजबूत किया था। उनके समय में नारा था 'तिलक तराजू और तलवार इनको मारों जूते चार'। लेकिन मायावती ने उसको पलट दिया। मायावती ने बहुजन हिताय! की जगह सर्वजन सुखाय की बात करने लगी उसने शुरूआत तो 1999 के बाद ही कर दी थी लेकिन पूरी तरह 2007 के चुनावों में सामने आयी जिसने ब्राह्मण वर्ग से गठजोड़ कर एक गठबंधन तैयार किया। जिस गठबंधन से दलित और ब्राह्मणों की खिचड़ी पकी तो मायावती का बहुमत का आकड़ां बढ़ गया।[43]

मायावती ने कुछ गलतियां भी की क्योंकि वह मान बैठी की सत्ता अस्थायी होती है अगली बार न जाने कब मुख्यमंत्री बनने का मौका मिले जिससे उस पर भ्रष्टाचार के भयानक आरोप लगने लगे एक से बढ़कर एक कहानियां उत्तर प्रदेश में सुनने को मिलने लगी। जो कांशीराम के समय में दलित आन्दोलन था उस आन्दोलन से हटकर मायावती की अगुवाई में दलित आन्दोलन, आन्दोलन न होकर सरकार चलाने की मशीन बन गया। दलित आन्दोलन के समय के सभी साथियों का इससे मोह भंग हो गया। आज शायद ही कोई होगा, जो कांशीराम के समय का हो, क्योंकि वे आन्दोलन पहले ही खत्म हो गया। वे लोग या तो पार्टी छोड़ गये या फिर उनको पार्टी ने बाहर का रास्ता दिखा दिया। देखा जाये तो कांशीराम के समय बसपा में

---

43 कन्हैयालाल चंचरीक, Op.cit., (9), p. 228.

लोकतन्त्र था आज वो लोकतन्त्र दिखाई नहीं देता। कांशीराम के बाद मायावती का आन्दोलन उत्तर प्रदेश से बाहर न के बराबर रह गया।

मायावती की राजनीतिक आलोचना

मायावती के कुछ नकारात्मक पक्षों को देखकर उसकी कुछ निम्नलिखित आलोचनायें होती है जो इस प्रकार है–

जिससे मायावती एक नेता न बनकर एक सुबे की मुख्यमन्त्री बनकर रह गई। आगे कहा जाता है कि कांशीराम ने अपने सामने मायावती को उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था लेकिन इसकी वजह से डी.एस–4 के समय, के उनके साथी काफी नाराज हो गये थे। देखा जाये तो कांशीराम में असुरक्षा भाव नहीं था। लेकिन मायावती ताकतवर होने के बाद भी असुरक्षित महसूस करती है। इस कारण उनका उत्तराधिकारी तो बाद की बात है अगला शक्तिशाली नेता दिखाई नहीं देता है।[44]

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी ने उत्तर प्रदेश में भाजपा और बसपा के गठबंधन को एक अनैतिक करार दिया। इस दिन को काले दिवस के रूप में मनाया गया। कांग्रेस पार्टी महासचिव ने आगे कहा कि मायावती ने मतदाताओं से चुनाव पूर्व किये गये बादे के विपरीत गठबंधन किया है। बसपा की जीत का आधार भाजपा की भ्रष्ट एवं साम्प्रदायिक नीतियों का विरोधी था। यह अपनी विचारधारा के विपरीत कार्य किया है। जनता को गुमराह किया गया है क्योंकि अम्बेडकर की विचारधारा भाजपा की विचार धारा से नहीं मिलती है।[45]

मायावती अपनी कमियों के लिये खुद जिम्मेदार है। उसने गौतम बुद्ध से अम्बेडकर तक दलित अधिकारों की लड़ाई एक जातिविरोधी थी लेकिन मायावती ने इस दलित परम्परा से हटकर उसे जातिवादी बना दिया। जिससे कि मायावती ने जातियों का समीकरण बनाकर सत्ता प्राप्त की। मायावती ने जो भी ऊँचाई प्राप्त की वह जातिय ध्रुवीकरण के आधार पर की। उसी

---

44 *दैनिक भास्कर,* नई दिल्ली, 16 जनवरी, 2012, पृ. 7.

45 कन्हैयालाल चंचरीक, Op.cit., (9), pp. 228-229.

ध्रुवीकरण ने मायावती को नीचे गिरा दिया। जातिवाद का मुद्दा ज्यादा समय तक नहीं ठहरता। जाति की अवधारणा काफी खतरनाक है इसके खिलाफ संघर्ष की अति आवश्यकता है। बसपा ने कभी ब्राह्मण सम्मेलन, तो कभी क्षत्रिय, कभी बनिया सम्मेलन, कभी दलित जातियों के अलग-अलग सम्मेलन किये। जाति एक ऐसी भावना है जो लोगों को भड़काकर जातिवाद बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त करती है लेकिन इस से कुछ समय के लिये लाभ जरूर प्राप्त होगा, पर दीर्घ काल तक चलने वाली चीज नहीं है।

मायावती ने बसपा के नारे को ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' को पुन:परिभासित करके ''सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय'' में बदल दिया। यह बदलाव जाति विरोधी आन्दोलन के खिलाफ था। मायावती अपनी विचारधारा में बदलाव करके कहा कि ब्राह्मण शोषित है उसने ब्राह्मणों को चुनावों में शामिल करने सत्ता में आने व उनसे गठबंधन करने का खुलेआम निमंत्रण दिया। पहली बार एक दलित नेता ने ऐसा किया था जो उसकी विचारधारा के विरूद्ध था। इसी के साथ बसपा ने अपने चुनाव चिन्ह पर यह नारा बना डाला कि ''यह हाथी नहीं गणेश है ब्राह्मा, विष्णु, महेश है'' क्या उस नारे को मायावती भूल गई। जिसका नारा ''तिलक तराजू और तलवार इनको मारो जूते चार'' को ही पलट दिया।[46]

शिवराम विज नाम के पत्रकार ने उत्तर भारत के दलितो पर बड़े विस्तार से तहलका में एक लेख में संकेत किया है कि "मायावती के नेतृत्व वाली बसपा की अक्सर इसलिए आलोचना की जाती है क्योंकि उसने दलितो को, आत्मसम्मान के सिवा और विशेष कुछ नहीं किया। कहा जाता है कि पार्टी सत्ता के लिए जाति का इस्तेमाल करती है दलितों को अम्बेडकर की प्रतिमाओं से सम्मोहित करके।[47]

प्रो. तुलसी राम, अपने लेख में बताते हैं कि मायावती की हार पहले से अपेक्षित थी। मै पहले से कहता रहा हूँ कि बुद्ध से अम्बेडकर तक की लड़ाई जाति विरोधी थी, लेकिन मायावती ने इस मिशन को जातिवादी बना दिया और जाति का समीकरण बना कर वह सत्ता में

---

46 *दैनिक भास्कर,* नई दिल्ली, 5 जनवरी, 2012, पृ. 7.

47 Shivam Viz, Icon for an Orcan, *Tahalka.com,* 17 march, 2007.

आयी और जिस कारण मायावती का उत्थान जातिय ध्रुवीकरण के आधार पर हुआ था और उसी ध्रुवीकरण ने मायावती का तखता पलट कर दिया। जाति के मुद्दे से छेड़छाड़ करने वाले को यही परिणाम देखना पड़ेगा।[48]

अजय बोस अपनी पुस्तक में कहते हैं कि कुछ उग्रवादी दलित बुद्धि जीवियों ने मायावती की आलोचना दूसरे ढंग से की है। वो इस बात को मानते हैं कि उन्होंने और कांशीराम ने दलित समाज के कुछ दूसरे असहाय और शोषित वर्गो का राजनैतिक सशक्तिकरण किया है। डर उन्हें इस बात का है कि दीर्घकालीन सामाजिक परिवर्तन के एजेंट की हैसियत से मायावती विश्वसनीय नही होगीं। उग्रवादियों को लगता है कि उनकी राजनैतिक अवसरवादिता, विचारधारात्मक छिछोरापन, निजी फिजूलखर्ची और इस सबके अलावा भू सुधार कार्यक्रम का अभाव से सारी बातें उस सामाजिक क्रांति की विरोधी है जिसकी शुरूआत बसपा को देश के सबसे बड़े राज्य में करनी चाहिए।[49]

कृष्ण प्रताप सिंह अपने लेख में लिखते है कि दलितों की कई जातियाँ मायावती और उनकी सरकार की रीति-नीति से खासी अंसतुष्ट है। उनका असंतोष का कारण यह है कि मायावती ने उत्तर प्रदेश में जिन 88 दलितों को उम्मीदवार बनाया, उनमे से 78 खुद उनकी अपनी जाटव जाति के हैं। उन्होंने पासियों को 4, धोबियों को 2 और धानुक, नट व वाल्मीकि जातियों को 1-1 टिकट ही दिया है। दलितों की एक अन्य जाति कोरी भी प्रदेश के कई इलाको मे ताकतवर मानी जाती है लेकिन मायावती ने उसके एक भी प्रतिनिधि को प्रत्याशी नही बनाया। ज्ञात है कि प्रदेश में दलितों की कुल 66 जातियाँ निवास करती है लेकिन उनकी सरकार में चार दलित जातियो की भागीदारी है जिसे जाटव जाति को ही इससे लाभ प्राप्त हुआ है इसलिए इसकी आलोचना होती रही है।[50] आगे कहते है कि दलितों पर अपनी ही सरकार में दोहरा अत्याचार होता रहा है। मायावती ने सत्ता में आते ही अपनी नई ब्राह्मण दलित सोशल

---

48 *दैनिक भास्कर,* नई दिल्ली, 5 मार्च 2012, पृ. 8.

49 अजय बोस, op.cit.,(1), p. 251.

50 *दैनिक भास्कर,* नई दिल्ली, 2 फरवरी 2012,पृ.-7.

इंजीनियरिंग के तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण कानून पर अमल रोक दिया था। उनका तर्क था कि इस का दुरूपयोग हो रहा है। खास वर्गचरित्र वाली प्रदेश की पुलिस ने इस तर्क के संकेतों को अपनी खास शैली में समझा और दलितों के विरूद्ध अत्याचारो की प्रथम सूचनाएं दर्ज करने से ही परहेज करना शुरू कर दिया। आगे कहते है कि मायावती ने अपने समूचे कार्यकाल में जिन दर्जनों मंत्रियों को बर्खास्त किया, उनमें से एक बड़ी संख्या ऐसी थी जो दलित उत्पीड़न में अपनी लिप्तता के कारण बदनाम थी। उनके विरूद्ध कार्रवाई भी मायावती ने अपनी इच्छा से नही, बढ़ते दबाव में मजबूर होकर की। इसका संदेश यही गया कि अपनी सरकार में भी दलितों की बहू-बेटियो की मान-मर्यादा और आत्म सम्मान सुरक्षित नहीं हैं।[51]

मायावती की आलोचना इस बात से भी होती है कि राज्य के सवा सौ पार्क कांशीराम के नाम और अपनी/अपने परिवारजनों की मूर्तियां बनवाना जबकि कांशीराम की अच्छाईयों को दबाया गया। पार्कों में अन्य महापुरुषों की मूर्तियों पर अधिक-से-अधिक धन बर्बाद किया क्या दलितों या अन्य निम्न वर्गों का योजनाओं के माध्यम से उनका भला हो सकता था? शिक्षा या अन्य माध्यम के द्वारा, इस वर्ग की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता था। यह भी एक आलोचना का कारण बना।

मायावती को 2012 के विधानसभा चुनावों में सबसे बड़ी चुनौती थी कि उसने 22 मन्त्रियों को आपराधिक व भ्रष्टाचार के मामले में निकाल दिया जिससे बसपा उनकी आलोचना का शिकार बनी। उसी के साथ दूसरी चुनौती यह थी कि विधायकों के टिकट कटते गये और वह अपनी बेइज्जती महसूस कर रहे थे। जिनमें इनकी संख्या लगभग 110 थी। जनता के बीच न पहुँच पाना व अन्य बाते रही जिससे बसपा आलोचना का शिकार बनती रही जिसके कारण उस पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे।

इन आलोचनाओ के बाद हम बसपा को उसकी विचारधारा के आधार पर दो भागों मे

---

[51] Ibid., 2 फरवरी 2012, पृ.-7.

विभाजित करके देख सकते हैं पहली बसपा ''बहुजन हिताय: बहुजन सुखाय'' के सिद्धान्त में विश्वास रखती थी। दूसरी बसपा ''सर्वजन हिताय: सर्वजन सुखाय'' के सिद्धान्त में विश्वास रखती है, विचारधारा के आधार पर अम्बेडकर के गठबंधन की विचारधारा ''बहुजन हिताय: बहुजन सुखाय'' तक तो कुछ सीमा तक समान दिखाई देती है लेकिन ''सर्वजन हिताय: सर्वजन सुखाय'' के सिद्धान्त में इनकी विचारधारा पुन:परिभाषित दिखाई देती है। जिससे बसपा पर अम्बेडकर की विचारधारा से हटने के आरोप लगते रहे। जब मायावती की बात आती है तो उन्होंने भाजपा व कांग्रेस से कई बार गठबंधन किये और उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बनी। लेकिन उन गठबंधनों में अम्बेडकर की विचारधारा दिखाई नहीं देती है। हाँ इतना कह सकते है कि आज के युग में दलितों के बल पर सत्ता प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि कुछ दलित बसपा के साथ है तो कुछ कांग्रेस और भाजपा के साथ खड़े है इसी करण बसपा अपने दम पर सत्ता कैसे प्राप्त कर सकती है? इसको सत्ता प्राप्त करने के लिये किसी भी पार्टी से गठबंधन की आवश्यकता तो पड़ेगी। वह अपने बल पर सत्ता नहीं प्राप्त कर सकती। फिर भी देखा जाये तो बसपा ने जो भी गठबंधन किये, उन गठबंधनों में अपनी विचारधारा ''बहुजन हिताय: बहुजन सुखाय'' को नहीं बदला। जो कि दूसरी वाली बसपा (जो सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय में विश्वास रखती है) ने सोशल इंजीनियरिंग के द्वारा ब्राह्मणों के साथ गठबंधन करना। यह गठबंधन भी वास्तविक तौर पर अम्बेडकर की विचारधारा के प्रतिकूल दिखाई देता है

जिसके कारण मायावती से कुछ दलित इसके विरूद्ध हुए तो कुछ विरोधी विचारधारा वाले लोग बसपा के साथ अपने स्वार्थ के प्रति जुड़े। जब तक उनका स्वार्थ रहा तब तक मायावती के साथ रहे, जैसे ही उनका स्वार्थ पूरा होता गया। वह बसपा से निकल कर उसके विरोधी बनकर खड़े हो गये, कुछ दूसरी पार्टियों में चले गये। जिससे वह बसपा के विरोधी बनकर उभरे। इसके कारण मायावती का वोट बैंक कम होता चला गया क्योंकि किसी भी राज्य के विधानसभाओं के वोट प्रतिशत के आकड़ों को देखा जाये तो बसपा के सिद्धान्त 'बहुजन हिताय: बहुजन सुखाय' में बदलाव के बाद ही उसका वोट बैंक कम होता दिखाई दे रहा है और लोक सभा 2014 के चुनावों के आकड़ों को देखकर यह प्रतीत होता है कि आज बसपा

किस स्थिति के मोंड़ पर खड़ी हो गयाी है? और आज अम्बेडकर की विचारधारा को मायावती आत्मसात करने के साथ-साथ पुन:परिभाषित भी कर रही हैं।

निष्कर्ष

बहुजन समाज की विचारधारा 'बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय' में विश्वास रखती है। जैन धर्म के अन्तिम तीर्थकार महावीर स्वामी व गौतम बुद्ध ने इसी विचारधारा को अपना एक उद्देश्य बनाया। आगे चलकर अम्बेडकर ने इसी विचारधारा को अपना मूलमन्त्र माना। जिसको कांशीराम ने इसको सामाजिक दर्शन का रूप दिया मायावती ने इसे आगे बढ़ाया जिससे कि लोकतन्त्र में बहुजन समाज की अहमियत बढ़ने लगी। जिससे देखा जाए तो बहुजन समाज जिसकी संख्या 85 प्रतिशत होने पर भी यह अपने अधिकारों से वंचित व सत्ता से दूर रहा है जबकि 15 प्रतिशत ब्राह्मण वर्ग सत्ता पर कब्जा जमाये बैठा रहा है। कांशीराम ने अम्बेडकर के मिशन को आगे बढ़ाते हुए 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की। उन्होंने बसपा को मजबूत करने के लिये पहला गठबंधन सपा से किया जिससे उसके मत बैंक में बढ़ोत्तरी हुई। इस गठबंधन से दलितों के साथ-साथ अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग पर इसकी पकड़ मजबूत होती गई। फिर भाजपा तथा कांग्रेस से गठबंधन कर सत्ता में आयी।

अम्बेडकर की विचारधारा पर चलते हुये मायावती ने मनुवादी पार्टियों, भाजपा और कांग्रेस से गठबंधन किया जिससे यह प्रश्न उठता है कि इससे इनकी विचारधारा तो नहीं मिलती और उसी के साथ बहुजन हिताय के नारे को बदलकर सर्वजन सुखाय में बदल दिया क्या महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध व अम्बेडकर का यही मिशन था? और मायावती ने 2007 के चुनावों में सोशल इंजीनियरिंग का सहारा लेते हुये ब्राह्मण वर्ग को पार्टी में शामिल किया। और सत्ता प्राप्त की जिससे यही प्रतीत होता है कि इसने अम्बेडकर की विचारधारा को पुन:परिभाषित करके देखा इसी के साथ-साथ वह समय-समय पर अपनी विचारधारा को बदलती भी रही। और 2012 के विधानसभा चुनावों में सोशल इंजीनियरिंग फेल हो गई। जिससे मायावती अपनी हार के लिये खुद जिम्मेदार रही है। बुद्ध से अम्बेडकर तक यह आन्दोलन एक जाति विरोधी था और मायावती ने इस परम्परा को जातिवादी बना दिया, उसने जातियों का समीकरण बना कर

सत्ता प्राप्त की। मायावती का उत्थान जातिय ध्रुवीकरण के आधार पर हुआ था। उसी ध्रुवीकरण ने उसे नीचे गिरा दिया। बसपा के ब्राह्मण सम्मेलन, क्षत्रीय सम्मेलन, वैश्य सम्मेलन हो या स्वयं दलित जातियों के अलग-अलग सम्मेलन किए, इन सम्मेलनों से बसपा को जाति विनाश का नहीं बल्कि जातिय भावना भड़का कर जातिवाद बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त हुआ। मायावती को कुछ समय तो इसका लाभ प्राप्त हुआ लेकिन जातिय ध्रुवीकरण दूर तक चलने वाली चीज नहीं है। मायावती ने तीन बार अल्पमत गठबंधन करके सत्ता प्राप्त की तो वही एक दलीय बहुमत सरकार के बल सत्ता प्राप्त की आगे उनकी रणनीति सफल नहीं हो सकी।